पेरिस
२४ फरवरी, २००५

संदेश संख्या – ७६

प्रेम, जीवन और भगवत्ता

(मृत्यु, विविधता और दिव्यता)

जीवन मृत्यु के विपरीत नहीं है । मृत्यु का विपरीत तो जन्म है । जीवन न जन्म लेता है और न मरता है । केवल शरीर जन्म लेता है और मरता है । वह चीज जिसमें जीवन का लक्षण होता है, चेतन कही जाती है और जिसमें जीवन का लक्षण नहीं होता उसे जड़ या भौतिक पदार्थ कहते हैं । जीवन देहमुक्त और पूर्ण चैतन्य है । जीवन सर्वव्यापक, अस्तित्वमय और शाश्वत है। जीवन–ऊर्जा स्वभावतः चैतन्य है, प्रेम है और भगवत्ता है । भगवत्ता के अधीन प्रस्फुटन और सुरभि है, विविधता और सर्जनात्मकता है जो एक दूसरे के पूरक हैं किंतु सभी मिलकर एक पूर्ण को ही दर्शाते हैं । क्षुद्र आदमी या औरत के घटिया नेतृत्व के अधीन राजनीतिक, विचारधारात्मक, प्रजातांत्रिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या आध्यात्मिक कोई भी क्षेत्र हो, केवल अनुसरण और विखण्डन ही होता है । वे अपनी क्रूरता, द्वन्द्व और अन्तर्विरोध के कारण केवल विभाजन को ही जन्म देते हैं । शरीरी चेतना तरंग की तरह है जो अनन्तकाल से उत्पन्न हो रही है और समाप्त हो रही है। समुद्र के बोध के बाद भी क्या तरंग का बनते रहना सम्भव है ? जब वास्तविक ''मैं'' समुद्र है तो एक छोटी तरंग कैसे खुश या भ्रांत या अभिभूत या क्षुद्र ''मैं–पना'' (अहंकार) से आवृत्त हो सकती है ? यह अहंकार का ढाँचा और विचारों का यह जाल क्यों सभी प्रकार की धूर्तता, धर्मशास्त्र की मतलबी धारणाओं, निष्कर्षों, विश्वास तथा अविश्वास पद्धतियों द्वारा किसी भी प्रकार से इस क्षुद्र ''मैं'' को सततता और चिरस्थायित्व देना चाहते हैं ? मानव–शरीर में चेतना क्यों सभी प्रकार के अपराध, अपराधबोध–ग्रस्तता, तुष्टीकरण, भय, कल्पना, लालसा और अन्तर्द्वन्द्व में फँसी रहती है और इस तरह वह स्वयं क्यों सभी प्रकार के शोषण, भावुकता और बंधनों को उपलब्ध रहती है ?

विभिन्न अवयव मिलकर उस चेतना का निर्माण करते हैं जिससे हमलोग परिचित हैं और ये अवयव हैं–जानकारी, अनुभव, मानसिक अवसाद, पूर्वाग्रह, दबाव, आडम्बर, विरोधाभास, पूर्वधारणा, महत्वाकांक्षा, भय, संस्कृति इत्यादि। यह शरीरी चेतना अर्थात् चित्तवृति इन्हीं आयामों में बंधी है। इन आयामों से बाहर कोई चेतना नहीं । फिर भी, मोक्ष प्राप्त करने की योजना के तहत इस चेतना से बाहर एक भिन्न अस्तित्व के रूप में ''मैं'' को प्रक्षेपित, प्रोन्नत तथा चिरस्थायी किया जाता है ताकि ''उद्धारक'' द्वारा उसका ''उद्धार'' हो सके । इस ''मैं'' तथा चेतना के अवयव बिल्कुल समान हैं । अतः चेतना से भिन्न वैयक्तिक ''मैं'' जैसी कोई चीज नहीं होती। ''मैं'' केवल संदर्भ–बिन्दु के रूप में उपयोगी हो सकता है न कि प्रतिक्रिया, प्रतिरोध, अप्रसन्नता, प्रतिशोध और प्रतिफल हेतु शक्ति–केन्द्र के रूप में । वस्तुतः वैयक्तिक (इनडिविजुअल) का अर्थ है–जो विभाजित न हो सके अर्थात् पूर्ण । चेतना से 'मैं' का यह वियोग (अलगाव) ही मनुष्य–जाति के दुःख और दुःख–भोग का मूल कारण है । आवश्यकतानुसार, ''मैं'' एक समन्वय–कर्त्ता के रूप में कार्य कर सकता है । इसे सतत विभेदकारी के रूप में नहीं रखा जाना चाहिए । चेतना में यह विभाजन ही इसे दिव्यता से दूर करता है। चेतना में यह विभाजन इसे विरोधी विचारों का युद्धस्थल बना देता है । प्रत्येक धर्म में मानसिक भयदोहन और भ्राचार, आश्वासन और धमकी, पुरस्कार और दण्ड, स्वर्ग और नरक आदि के रूप में धर्मशास्त्र आधारित ठगी द्वारा इस विभाजन को पुष्ट किया जाता है । इस कारण मानव–मस्तिष्क हमेशा ही परस्पर विपरीतों के गलियारे में उलझा रहता है । यह मानव मस्तिष्क है न कि अंग्रेज, फ्रेंच, यहुदी, अरबी, बौद्ध या ईसाई मस्तिष्क। यह विभाजन विनाशकारक है ।

मानव–स्मृति कम्प्यूटर की स्मृति की तरह है । विचार स्मृति से उत्पन्न अनुक्रिया है और इस तरह यह एक यांत्रिक और भौतिक प्रक्रिया है जैसा कि कम्प्यूटर में होता है । जन्म से मृत्यु पर्यन्त स्मृति और विचारों के सीमित क्षेत्र में रहते हुए दुःखमय जीवन बिताने को ही 'जीना' कहा जाता है । यह केवल मृत–अवधारणाओं और निष्कर्षों पर आधारित जीना है न कि जीवन्त–समझदारी और करूणा आधारित । इसीलिए यीशु ने कहा है–''चित्तवृत्ति के मृत अवधारणाओं से मुक्त हो ''और जीवन की कृपा के प्रति जागरूक हो । अतीत से संबंध के प्रति प्रतिक्षण मरना ही वर्तमान की ऊर्जा रूपी मुक्ति में जीवन को उपलब्ध होना है। मृत्यु को दूर भविष्य के लिए टालना वर्तमान में दिव्यता के परमानन्द से वंचित रह जाना है । अतः आध्यात्मिक–मंडी के धूर्तों द्वारा चलाये जा रहे ''जीने की कला'' के चक्कर में न फँसे । उससे अच्छा है कि स्वयं में मरने की कला की बुनियाद डालें । अवधान (attention) प्रेम का नकारात्मक आयाम है । अतः जो प्रेम नहीं है उसे नकार दिया जाना चाहिए । प्रेम मन और अहंकार के ढाँचे में अटता ही नहीं है । यह प्रेम अनुभव नहीं है। यह आनन्दपूर्ण अस्तित्व है। अनुभव होना वियोग की स्थिति है और योग–समाधि अस्तित्व के साथ समता की स्थिति है । समाधि कोमा नामक व्याधि नहीं है । यह तो करूणा है । प्रेम निर्मन अर्थात् परम प्रज्ञा का स्वामी है। यह मस्तिष्क के पूर्णरूपेण रिक्तता (शून्यता) की स्थिति है। इसी शून्यता रूपी परमानन्द में अद्भुत लय, पुनर्जीवन, पुनरूत्थान, प्रेम, जीवन, भगवत्ता, दिव्यता और मृत्यु है । सृ कि सारे आश्चर्य और रहस्य यहीं हैं । अनुभव की कोई भी संरचना, ज्ञात का कोई भी ढाँचा, कोई भी भगवान जो कि मन का प्रदूषण है, उसे स्पर्श नहीं कर सकता । इसका प्रकाशन किसी भी तरह के उपाधिधारक में नहीं होता चाहे वह परमहंस हो, पैगम्बर हो या पोप।

जीवन (ब्रह्मा), प्रेम (विष्णु) और मृत्यु (शिव) तीन नहीं हैं । इनका अलग–अलग रूपों में विभाजन मन की उपज है । दिव्यता तो निर्मन का अज्ञेय प्रबोध है ।

श्री गुरु चरणम् ।
श्री हरि शरणम् ।
नारायणी ।